सेवा के फल....

जगत का काम कीजिए, आपका काम होता ही रहेगा। जगत का काम करने पर आपका काम अपने-आप होता रहेगा और तब आपको आश्चर्य होगा।

मनुष्य ने जब से किसी को सुख देना शुरू किया, तब से धर्म की शुरूआत हुई। खुद का सुख नहीं, पर सामनेवाले की अड़चन कैसे दूर हो यही रहा करे, वहीं से कारुण्य की शुरूआत होती है। हमें बचपन से ही सामनेवाला की अड़चन दूर करने की चाह थी। खुद के लिए विचार भी नहीं आये वह कारुण्य कहलाये। उससे ही 'ज्ञान' प्रकट होगा!

- दादाश्री

ISBN 978-81-89933-08-1

सेवा-परोपकार

दादा भगवान कथित

सेवा-परोपकार

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
महाविदेह फाउन्डेशन
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसाइटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात
फोन - (०७९) २७५४०४०८, २७५४३९७९

© All Rights reserved - Shri Deepakbhai Desai
Trimandir, Simandhar City,
Ahmedabad-Kalol Highway, Post - Adalaj,
Dist.-Gandhinagar-382421, Gujarat, India.

प्रथम संस्करण : प्रतियाँ ३०००, फरवरी, २०१०

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : ५ रुपये

लेज़र कम्पोज़ : दादा भगवान फाउन्डेशन, अहमदाबाद

मुद्रक : महाविदेह फाउन्डेशन (प्रिन्टिंग डिवीजन),
पार्श्वनाथ चैम्बर्स, नयी रिज़र्व बैंक के पास,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१४.
फोन : (०७९) २७५४२९६४, ३०००४८२३

त्रिमंत्र

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरूष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का विज्ञान
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भूगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. पति-पत्नी का दीव्य व्यवहार
२१. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
२३. आप्तवाणी-१
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार

English

1. **Adjust Everywhere**
2. **Ahimsa (Non-violence)**
3. **Anger**
4. **Apatvani-1**
5. **Apatvani-2**
6. **Apatvani-6**
7. **Apatvani-9**
8. **Avoid Clashes**
9. **Celibacy : Brahmcharya**
10. **Death : Before, During & After...**
11. **Flawless Vision**
12. **Generation Gap**
13. **Gnani Purush Shri A.M.Patel**
14. **Guru and Disciple**
15. **Harmony in Marriage**
16. **Life Without Conflict**
17. **Money**
18. **Noble Use of Money**
19. **Pratikraman**
20. **Pure Love**
21. **Right Understanding to Help Others**
22. **Shree Simandhar Swami**
23. **Spirituality in Speech**
24. **The Essence of All Religion**
25. **The Fault of the Sufferer**
26. **The Science of Karma**
27. **Trimantra**
28. **Whatever has happened is Justice**
29. **Who Am I ?**
30. **Worries**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उनको विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखाई देते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसी के पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थीं। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशों में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड किया गया था। उसी वाणी का संकलन तथा संपादन होकर, वह पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुई। प्रस्तुत पुस्तक मूल गुजराती पुस्तक का अनुवाद है।

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो। उनकी हिन्दी के बारे में उनके ही शब्द में कहें तो 'हमारी हिन्दी याने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी का मिक्सचर है, लेकिन जब 'टी' (चाय) बनेगी, तब अच्छी बनेगी।'

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। मूल गुजराती शब्द जिनका हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं है, वे इटालिक्स में लिखे गए हैं। ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का मर्म समझना हो, तो वह गुजराती भाषा सीखकर, मूल गुजराती ग्रंथ पढ़कर ही संभव है। फिर भी इस विषय संबंधी आपका कोई भी प्रश्न हो तो आप प्रत्यक्ष सत्संग में आकर समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती और अंग्रेजी शब्द ज्यों के त्यों रखे गए हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादकीय

यह मन-वचन-काया दूसरों के सुख के लिए खर्च करें तो खुद को संसार में कभी भी सुख की कमी नहीं पड़ती। और अपने खुद के-सेल्फ का रियलाइज़ेशन करें, उसे सनातन सुख की प्राप्ति होती है। मनुष्य जीवन का ध्येय इतना ही है। इस ध्येय के रास्ते पर यदि चलने लगें तो मनुष्यपन में ही जीवनमुक्त दशा की प्राप्ति होगी । उससे आगे फिर इस जीवन में कोई भी प्राप्ति बाकी नहीं रहती।

आम का पेड़ खुद के कितने आम खा जाता होगा? उसके फल, लकड़ी, पत्ते आदि सब दूसरों के लिए ही काम आते हैं न? उसके फल स्वरूप वह ऊर्ध्वगति प्राप्त करता रहता है। धर्म की शुरूआत ही ओब्लाइजिंग नेचर (परोपकारी स्वभाव) से होती है। दूसरों को कुछ भी देतें हैं, तब से ही खुद को आनंद शुरू होता है।

परम पूज्य दादाश्री एक ही वाक्य में कहते हैं कि माँ-बाप की जो बच्चे सेवा करते हैं, उन्हें कभी पैसों की कमी नहीं आती, उनकी ज़रूरतें सब पूरी होती हैं, और आत्म साक्षात्कारी गुरु की सेवा करे, वह मोक्ष में जाता है।

दादाश्री ने अपनी पूरी ज़िन्दगी में यही ध्येय रखा था कि मुझे जो कोई मिला, उसे सुख प्राप्त होना ही चाहिए। अपने सुख के लिए विचार तक नहीं किया। पर सामनेवाले को क्या अड़चन है, उसकी अड़चन कैसे दूर हो, उस भावना में ही निरंतर रहते थे। तभी उनमें कारुण्यता प्रकट हुई थी। अद्‌भुत अध्यात्म विज्ञान प्रकट हुआ था।

प्रस्तुत संकलन में दादाश्री तमाम दृष्टिकोण से जीवन का ध्येय किस प्रकार सिद्ध करें, जो सेवा-परोपकार सहित हो, उसकी समझ सरल-सचोट दृष्टांतो द्वारा फिट करवाते हैं। जिन्हें जीवन में ध्येय रूप में आत्मसात् कर लें, तो मनुष्यपन की सार्थकता हुई कहलाएगी।

- डॉ. नीरुबहन अमीन के जय सच्चिदानंद

सेवा-परोपकार

मनुष्य जन्म की विशेषता

प्रश्नकर्ता : यह मनुष्य अवतार व्यर्थ नहीं जाए, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यह मनुष्य अवतार व्यर्थ नहीं जाए, उसीका सारे दिन चिंतन करें तो वह सफल होगा। इस मनुष्य अवतार की चिंता करनी है, वहाँ लोग लक्ष्मी की चिंता करते हैं! कोशिश करना आपके हाथ में नहीं है, पर भाव करना आपके हाथ में है! कोशिश करना दूसरों की सत्ता में है। भाव का फल आता है। वास्तव में तो भाव भी परसत्ता है, मगर भाव करें तो उसका फल आता है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य जन्म की विशेषता क्या है?

दादाश्री : मनुष्य जीवन परोपकार के लिए है और हिन्दुस्तान के मनुष्यों का जीवन 'एब्सोल्युटीज़म' के लिए, मुक्ति के लिए है। हिन्दुस्तान के अलावा बाहर अन्य देशों में जो जीवन है, वह परोपकार के लिए है। परोपकार यानी मन का उपयोग भी दूसरों के लिए करना, वाणी भी दूसरों के लिए उपयोग करनी और वर्तन का उपयोग भी दूसरों के लिए करना! मन-वचन-काया से परोपकार करना। तब कहेंगे, मेरा क्या होगा? वह परोपकार करे तो उसके घर में क्या रहेगा?

प्रश्नकर्ता : लाभ तो मिलेगा ही न?

दादाश्री : हाँ, मगर लोग तो ऐसा ही समझते हैं न कि मैं दूँगा तो मेरा चला जाएगा।

प्रश्नकर्ता : निचली कक्षा के लोग हों, वे ऐसा मानते हैं।

दादाश्री : उच्च कक्षावाला ऐसा मानता है कि दूसरों को दिया जा सकता है।

जीवन परोपकार के लिए...

इसका गुह्य साइन्स क्या है कि मन-वचन-काया परोपकार में लगा दें, तो आपके यहाँ हर एक चीज़ होगी। परोपकार के लिए करो, और यदि फ़ीस लेकर करो तो?

प्रश्नकर्ता : तकलीफ़ पैदा होगी।

दादाश्री : यह कोर्ट में फ़ीस लेते हैं। सौ रुपये पड़ेंगे, डेढ़ सौ रुपये देने पड़ेंगे। तब कहेंगे, 'साहिब, डेढ़ सौ ले लो।' पर परोपकार का कानून तो नहीं लगता न!

प्रश्नकर्ता : पेट में आग लगी हो तो ऐसा कहना ही पड़ता है न?

दादाश्री : ऐसा विचार करना ही मत। किसी भी तरह का परोपकार करोगे न तो आपको कोई अड़चन नहीं आएगी, अब लोगों को क्या होता है? अब अधूरा समझकर करने जाते हैं, इसलिए उलटा 'इफेक्ट' आता है। इसलिए फिर मन में श्रद्धा नहीं बैठती और उठ जाती है। आज करना शुरू करें, तब दो-तीन अवतार में ठिकाने लगे वह। यही 'साइन्स' है।

अच्छे-बुरे के लिए, परोपकार एक-सा

प्रश्नकर्ता : मनुष्य अच्छे भले के लिए परोपकारी जीवन जीता

है, लोगों से कहता भी है, पर वह जो अच्छे के लिए कहता है, उसे लोग 'मेरे खुद के भले के लिए कहता है', ऐसा समझने के लिए कोई तैयार नहीं, उसका क्या?

दादाश्री : ऐसा है, परोपकार करनेवाला सामनेवाले की समझ देखता नहीं है और यदि परोपकार करनेवाला सामनेवाले की समझ देखे तो वह वकालत कहलाती है। इसलिए सामनेवाले की समझ देखनी ही नहीं चाहिए।

ये पेड़ होते हैं न सभी, आम हैं, नीम हैं वे सभी, उन पर फल आते हैं, तब आम का पेड़ अपने कितने आम खाता होगा?

प्रश्नकर्ता : एक भी नहीं।

दादाश्री : किस के लिए हैं वे?

प्रश्नकर्ता : दूसरों के लिए।

दादाश्री : हाँ, तब वह देखते है कि यह लुच्चा है कि भला है, ऐसा देखते है? जो ले जाए उसके, मेरे नहीं। परोपकारी जीवन वह जीता है। ऐसा जीवन जीने से उन जीवों की धीरे-धीरे ऊर्ध्वगति होती है।

प्रश्नकर्ता : पर कई बार जिसके ऊपर उपकार होता है, वह व्यक्ति उपकार करनेवाले पर दोषारोपण करता है।

दादाश्री : हाँ, देखने का वही है न! वह जो उपकार करता है न, उसके ऊपर भी अपकार करता है।

प्रश्नकर्ता : नासमझी के कारण!

दादाश्री : यह समझ वह कहाँ से लाए? समझ हो तो काम हो जाए न! समझ ऐसी लाए कहाँ से?

परोपकार, यह तो बहुत ऊँची स्थिति है। यह परोपकारी लाइफ, सारे मनुष्य जीवन का ध्येय ही यह है!

जीवन में, महत् कार्य ही ये दो

और दूसरे इस हिन्दुस्तान के मनुष्य का अवतार किस लिए है? अपना यह बंधन, कायमी बंधन टूटे इस हेतु के लिए है, 'एब्सोल्यूट' होने के लिए है और यदि यह 'एब्सोल्यूट' होने का ज्ञान प्राप्त नहीं हो, तो तू दूसरों के लिए जीना। ये दो ही कार्य करने के लिए हिन्दुस्तान में जन्म है। ये दो कार्य लोग करते होंगे? लोगों ने तो मिलावट करके मनुष्य में से जानवर में जाने की कला खोज निकाली है।

सरलता के उपाय

प्रश्नकर्ता : जीवन सात्विक और सरल बनाने के क्या उपाय हैं?

दादाश्री : तेरे पास जितना हो उतना ओब्लाइजिंग नेचर रखकर लोगों को देता रह। ऐसे ही जीवन सात्विक होता जाएगा। ओब्लाइजिंग नेचर किया है तूने? तुझे ओब्लाइजिंग नेचर अच्छा लगता है?

प्रश्नकर्ता : कुछ अंश तक किया है!

दादाश्री : उसे अधिक अंश में करें, तो अधिक फायदा होगा। ओब्लाइज ही करते रहना। किसी के लिए फेरा लगाकर, चक्कर लगाकर, पैसे देकर, किसी दुखी को दो कपड़े सिलवा दें, ऐसे ओब्लाइज करना।

भगवान कहते हैं कि मन-वचन-काया और आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) का उपयोग दूसरों के लिए करना। फिर तुझे कोई भी दुःख आए तो मुझे बताना।

धर्म की शुरूआत ही 'ओब्लाइजिंग नेचर' से होती है। आप अपने

घर का दूसरों को दो, वहीं आनंद है। तब लोग ले लेना सीखते हैं! आप अपने लिए कुछ भी करना मत। लोगों के लिए ही करना तो अपने लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा।

भाव में तो सौ प्रतिशत

ये कोई पेड़ अपने फल खुद खाता है? नहीं! इसलिए ये पेड़ मनुष्य को उपदेश देते हैं कि आप अपने फल दूसरों को दो। आपको कुदरत देगी। नीम कड़वा ज़रूर लगता है, पर लोग उगाते हैं ज़रूर। क्योंकि उसके दूसरे लाभ हैं। वर्ना पौधा उखाड़ ही डालते। पर वह दूसरी तरह से लाभकारी है। वह ठंडक देता है, उसकी दवाई हितकारी है, उसका रस हितकारी है। सत्युग में लोग सामनेवाले को सुख पहुँचाने का ही प्रयोग करते थे। सारा दिन 'किसे ओब्लाइज करूँ' ऐसे ही विचार आते।

बाहर कम हो तो हर्ज नहीं, मगर अंदर का भाव तो होना ही चाहिए अपना कि मेरे पास पैसे हैं, तो मुझे किसी का दु:ख कम करना है। अक़्ल हो, तो मुझे अक़्ल से किसी को समझाकर भी उसका दु:ख कम करना है। खुद के पास जो सिलक बाकी हो उससे हेल्प करना, या तो ओब्लाइजिंग नेचर तो रखना ही। ओब्लाइजिंग नेचर यानी क्या? दूसरों के लिए करने का स्वभाव!

ओब्लाइजिंग नेचर हो, तो कितना अच्छा स्वभाव होता है! पैसे देना ही ओब्लाइजिंग नेचर नहीं है। पैसे तो हमारे पास हों या न भी हों। पर हमारी इच्छा, ऐसी भावना हो कि इसे किस प्रकार हेल्प करूँ। हमारे घर कोई आया हो तो, उसकी कैसे कुछ मदद करूँ, ऐसी भावना होनी चाहिए। पैसे देने या नहीं देने, वह आपकी शक्ति के अनुसार है।

पैसों से ही ओब्लाइज किया जाए ऐसा कुछ नहीं है, वह तो देनेवाले की शक्ति पर निर्भर करता है। खाली मन में भाव रखना है कि

किस तरह 'ओब्लाइज' करूँ? इतना ही रहा करे, उतना देखना है।

जीवन का ध्येय

जिससे कुछ भी अपने ध्येय की तरफ पहुँच पाएँ। यह बिना ध्येय के जीवन का तो कोई अर्थ ही नहीं है। डॉलर आते हैं और खा-पीकर मज़े उड़ाते हैं और सारा दिन चिंता-वरीज़ करते रहते हैं, यह जीवन का ध्येय कैसे कहलाए? मनुष्यपन मिला, वह व्यर्थ जाए, उसका क्या अर्थ है? इसलिए, मनुष्यपन मिलने के बाद अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए क्या करना चाहिए? संसार के सुख चाहिएँ, भौतिक सुख, तो आपके पास जो कुछ हो वह दो लोगों को। कुछ भी सुख लोगों को दो, तो आप सुख की आशा कर सकते हो। नहीं तो सुख आपको मिलेगा नहीं और यदि दु:ख दिया तो आपको दु:ख मिलेगा।

इस दुनिया का कानून एक ही वाक्य में समझ जाओ, इस संसार के सारे धर्मों का, कि यदि मनुष्य को सुख चाहिए, तो दूसरे जीवों को सुख दो और दु:ख चाहिए तो दु:ख दो। जो अनुकूल आए वह दो। अब कोई कहेगा कि हम लोगों को सुख कैसे दें? हमारे पास पैसे नहीं हैं। तो पैसों से ही दिया जाए ऐसा नहीं है। उसके साथ ओब्लाइजिंग नेचर रख सकते हैं, उसके लिए फेरा लगा सकते हैं, उसे सलाह दे सकते हैं, कई तरह से ओब्लाइज कर सकते हैं, ऐसा है।

धर्म अर्थात् भगवान की मूर्तियों के पास बैठे रहना, उसका नाम धर्म नहीं है। धर्म तो, अपने ध्येय तक पहुँचना, उसका नाम धर्म है। साथ-साथ एकाग्रता के लिए हम कोई भी साधन करें, वह अलग बात है, पर इसमें एकाग्रता करो तो सब एकाग्र ही है इसमें। ओब्लाइजिंग नेचर रखो, तय करो कि अब मुझे लोगों को ओब्लाइज ही करना है अब, तो आपमें परिवर्तन आ जाएगा। निश्चित करो कि मुझे वाईल्डनेस (जंगालियत) करनी नहीं है।

सामनेवाला वाईल्ड (जंगली) हो जाए, फिर भी मुझे नहीं होना है, तो ऐसा हो सकता है। नहीं हो सकता? निश्चित करो तब से थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन होगा कि नहीं होगा?

प्रश्नकर्ता : मुश्किल है पर।

दादाश्री : ना! मुश्किल हो, फिर भी नक्की करें न, क्योंकि आप मनुष्य हो और भारत देश के मनुष्य हो। ऐसे-वैसे हो? ऋषि-मुनियों के पुत्र हो आप! बहुत शक्तियाँ आपके पास पड़ी हुई हैं। वे आवृत होकर पड़ी हैं। वे आपके क्या काम आएँगी? इसलिए आप मेरे इस शब्द के अनुसार यदि तय करो कि मुझे यह करना ही है, तो वह अवश्य फलेगी, वर्ना ऐसे वाईल्डनेस कब तक करते रहोगे? और आपको सुख मिलता नहीं है। वाईल्डनेस में सुख मिलता है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : उलटे दुःख ही निमंत्रित करते हो।

परोपकार से पुण्य साथ में

जब तक मोक्ष ना मिले, तब तक पुण्य अकेला ही मित्र समान काम करता है और पाप-दुश्मन के समान काम करता है। अब आपको दुश्मन रखना है या मित्र रखना है? वह आपको जो अच्छा लगे, उसके अनुसार निश्चित करना है। और मित्र का संयोग कैसे हो, वह पूछ लेना और दुश्मन का संयोग कैसे जाए, वह भी पूछ लेना। यदि दुश्मन पसंद हो उसका संयोग कैसे हो यह पूछे, तो हम उसे कहेंगे कि जितना चाहे उतना उधार करके घी पीना, चाहे जहाँ भटकना, और तुझे ठीक लगे वैसे मज़े उड़ाना, फिर आगे जो होगा देखा जाएगा! और पुण्यरूपी मित्र चाहिए तो हम बता दें कि भाई इस पेड़ के पास से सीख ले। कोई वृक्ष अपना फल खुद खा जाता है? कोई गुलाब अपना फूल खा जाता होगा?

थोड़ा-सा तो खाता होगा, नहीं? हम नहीं हों तब रात को खा जाता होगा, नहीं? नहीं खा जाता?

प्रश्नकर्ता : नहीं खाता।

दादाश्री : ये पेड़-पौधे तो मनुष्यों को फल देने के लिए मनुष्यों की सेवा में हैं। अब पेड़ों को क्या मिलता है? उनकी ऊर्ध्वगति होती है और मनुष्य आगे बढ़ते हैं उनकी हेल्प लेकर! ऐसा मानो कि, हमने आम खाया, उसमें आम के पेड़ का क्या गया? और हमें क्या मिला? हमने आम खाया, इसलिए हमें आनंद हुआ। उससे हमारी वृत्तियाँ जो बदलीं, उससे हम सौ रुपये जितना अध्यात्म में कमाते हैं। अब आम खाया, इसलिए उसमें से पाँच प्रतिशत आम के पेड़ को आपके हिस्से में से जाता है और पँचानवे प्रतिशत आपके हिस्से में रहता है। वे लोग हमारे हिस्से में से पाँच प्रतिशत ले लेते हैं और वे बेचारे ऊँची गति में जाते है और हमारी अधोगति नहीं होती है, हम भी आगे बढ़ते हैं। इसलिए ये पेड़ कहते हैं कि हमारा सबकुछ भोगो, हर एक प्रकार के फल-फूल भोगो।

योग उपयोग परोपकाराय

इसलिए यह संसार आपको पुसाता हो, संसार आपको पसंद हो, संसार की चीज़ों की इच्छा हो, संसार के विषयों की वांछना हो तो इतना करो, 'योग उपयोग परोपकाराय।' योग यानी यह मन-वचन-काया का योग, और उपयोग यानी बुद्धि का उपयोग, मन का उपयोग करना, चित्त का उपयोग करना, ये सभी दूसरों के लिए उपयोग करना और दूसरों के लिए नहीं खर्च करते, तब भी हमारे लोग आख़िर में घरवालों के लिए भी खर्च करते हैं न? इस कुतिया को खाने का क्यों मिलता है? जिन बच्चों के भीतर भगवान रहे हैं, उन बच्चों की वह सेवा करती है। इसलिए उसे सब मिल जाता है। इस आधार पर संसार सारा चल रहा है। इस

पेड़ को खुराक कहाँ से मिलती है? इन पेड़ो ने कोई पुरुषार्थ किया है? वे तो ज़रा भी 'इमोशनल' नहीं हैं। वे कभी 'इमोशनल' होते हैं? वे तो कभी आगे-पीछे होते ही नहीं। उन्हें कभी ऐसा होता नहीं कि यहाँ से एक मील दूर विश्वामित्री नदी है, तो वहाँ जाकर पानी पी आऊँ!

प्रामाणिकता और पारस्पारिक 'ओब्लाइजिंग नेचर'। बस, इतना ही ज़रूरी है। पारस्पारिक उपकार करना, इतना ही मनुष्य जीवन की बड़ी उपलब्धि है! इस संसार में दो प्रकार के लोगों को चिंता मिटती है, एक ज्ञानी पुरुष को और दूसरे परोपकारी को।

परोपकार की सच्ची रीति

प्रश्नकर्ता : इस संसार में अच्छे कृत्य कौन-से कहलाते हैं? उसकी परिभाषा दी जा सकती है?

दादाश्री : हाँ, अच्छे कृत्य तो ये पेड़ सभी करते हैं। वे बिलकुल अच्छे कृत्य करते है। पर वे खुद कर्त्ता भाव में नहीं है। ये पेड़ जीवित हैं। सभी दूसरों के लिए अपने फल देते है। आप अपने फल दूसरों को दे दो। आपको अपने फल मिलते रहेंगे। आपके जो फल उत्पन्न हों- दैहिक फल, मानसिक फल, वाचिक फल, 'फ्री ऑफ कोस्ट' लोगों को देते रहो तो आपको आपकी हरएक वस्तु मिल जाएगी। आपकी जीवन की ज़रूरतों में किंचित् मात्र अड़चन नहीं आएगी और जब वे फल आप अपने आप खा जाओगे तो अड़चन आएगी। यदि आम का पेड़ अपने फल खुद खा जाए तो उसका जो मालिक होगा, वह क्या करेगा? उसे काट देगा न? इसी तरह ये लोग अपने फल खुद खा जाते हैं। इतना ही नहीं ऊपर से फ़ीस माँगते है।

एक अर्ज़ी लिखने के बाईस रुपये माँगते हैं! जिस देश में 'फ्री ऑफ कोस्ट' वकालत करते थे और ऊपर से अपने घर भोजन कराकर

वकालत करते थे, वहाँ यह दशा हुई है। यदि गाँव में झगड़ा हुआ हो, तो नगरसेठ उन दो झगड़नेवालों से कहता, 'भैया चन्दूलाल आज साढ़े दस बजे आप घर आना और नगीनदास, आप भी उसी समय घर आना।' और नगीनदास की जगह यदि कोई मज़दूर होता या किसान होता जो लड़ रहे होते तो उनको घर बुला लेता। दोनों को बिठाकर, दोनों को सहमत करवा देता। जिसके पैसे चुकाने हों, उसे थोड़े नक़द दिलवाकर, बाकी के किश्तों में देने की व्यवस्था करवा देता। फिर दोनों से कहता, 'चलो, मेरे साथ भोजन करने बैठ जाओ।' दोनों को खाना खिलाकर घर भेज देता। हैं आज ऐसे वकील? इसलिए समझो और समय को पहचानकर चलो। और यदि खुद, खुद के लिए ही करे, तो मरते समय दुखी होता है। जीव निकलता नहीं और बंगले-मोटर छोड़कर जा नहीं पाता!

सलाह के पैसे उनसे माँगते नहीं थे। ऐसा-वैसा करके निबटा देते। खुद घर के दो हज़ार देते थे। और आज सलाह लेने गया हो तो सलाह की फ़ीस के सौ रुपये ले लेंगे। 'अरे, जैन हो आप,' तब कहे, 'जैन तो हैं, पर धंधा चाहिए कि नहीं चाहिए हमें? साहिब, सलाह की भी फ़ीस? और आप जैन? भगवान को भी शरमिंदा किया? वीतरागों को भी शरमिंदा किया? नो हाउ की फ़ीस? यह तो कैसा तूफ़ान कहलाए?'

प्रश्नकर्ता : यह अतिरिक्त बुद्धि की फ़ीस, ऐसा कहते हो न?

दादाश्री : क्योंकि बुद्धि का विरोध नहीं है। यह बुद्धि, विपरीत बुद्धि है। खुद का ही नुकसान करनेवाली बुद्धि है। विपरीत बुद्धि! भगवान ने बुद्धि के लिए विरोध नहीं किया। भगवान कहते हैं, सम्यक् बुद्धि भी हो सकती है। वह बुद्धि बढ़ गई हो, तो मन में ऐसा होता है कि किस-किस का निकाल करके दूँ, किस किस की हेल्प करूँ? किस किस को सर्विस नहीं है, उसे सर्विस मिले ऐसा कर दूँ।

ओब्लाइजिंग नेचर

प्रश्नकर्ता : अब मेरी दृष्टि से कहता हूँ कि अब एक कुत्ता हो, वह किसी कबूतर को मारे और हम बचाने जाएँ तो मेरी दृष्टि से हमने ओब्लाइज किया, तो वह तो हम व्यवस्थित के मार्ग में आए न?

दादाश्री : वह ओब्लाइज होगा ही कब? जब उसका 'व्यवस्थित' हो तभी होगा हमसे, नहीं तो होगा ही नहीं। हमें ओब्लाइजिंग नेचर रखना है। उससे सारे पुण्य ही बंधेंगे, इसलिए दु:ख उत्पन्न होने का साधन ही नहीं रहा। पैसों से नहीं हो सके तो, फेरा लगाकर या बुद्धि के द्वारा, समझाकर भी, चाहे किसी भी रास्ते ओब्लाइज करना।

परोपकार, परिणाम में लाभ ही

और यह लाइफ यदि परोपकार के लिए जाएगी तो आपको कोई भी कमी नहीं रहेगी। किसी तरह की आपको अड़चन नहीं आएगी। आपकी जो-जो इच्छाएँ हैं, वे सभी पूरी होगी और ऐसे उछल-कूद करोगे, तो एक भी इच्छा पूरी नहीं होगी। क्योंकि वह रीति, आपको नींद ही नहीं आने देगी। इन सेठों को तो नींद ही नहीं आती है, तीन-तीन, चार-चार दिन तक सो ही नहीं पाते, क्योंकि लूटपाट ही की है जिसकी-तिसकी।

इसलिए, ओब्लाइजिंग नेचर किया कि राह चलते-चलते, यहाँ पड़ोस में किसी को पूछते जाएँ कि भैया, मैं पोस्ट ऑफिस जा रहा हूँ। आपको कोई ख़त पोस्ट करना है? ऐसे पूछते-पूछते जाने में क्या हर्ज है मगर? कोई कहे कि मुझे तुझ पर विश्वास नहीं आता। तब कहें, भैया, पैर पड़ता हूँ। मगर दूसरे को विश्वास आए, तो उनका तो ले जाएँ।

यह तो मेरा बचपन का गुण था, वह मैं कहता हूँ। ओब्लाइजिंग

नेचर और पच्चीस साल का हुआ तो मेरा सारा फ्रेन्ड सर्कल मुझे सुपर ह्युमन कहता था।

ह्युमन कौन कहलाए कि जो ले-दे, समान भाव से व्यवहार करे। सुख दिया हो, उसे सुख दे। दु:ख दिया हो, उसे दु:ख न दे। ऐसा सब व्यवहार करे, वह मनुष्यपन कहलाता है।

इसीलिए जो सामनेवाले का सुख ले लेता है, वह पाशवता में जाता है। जो खुद सुखे देता है और सुख लेता है, ऐसा मानवीय व्यवहार करता है, वह मनुष्य में रहता है और जो खुद का सुख दूसरों को भोगने के लिए दे देता है, वह देवगति में जाता है, सुपर ह्युमन। खुद का सुख दूसरों को दे दे, किसी दुखी को, वह देवगति में जाता है।

उसमें इगोइज़म नोर्मल

प्रश्नकर्ता : परोपकार के साथ 'इगोइज़म' की संगति होती है?

दादाश्री : हमेशा परोपकार जो करता है, उसका 'इगोइज़म' नोर्मल ही होता है। उसका 'इगोइज़म' वास्तविक होता है और जो कोर्ट में डेढ़ सौ रुपये फ़ीस लेकर दूसरों का काम करते हों, उनका 'इगोइज़म' बहुत बढ़ा हुआ होता है।

इस संसार का कुदरती नियम क्या है कि आप अपने फल दूसरों को देंगे तो कुदरत आपका चला लेगी। यही गुह्य साइन्स है। यह परोक्ष धर्म है। बाद में प्रत्यक्ष धर्म आता है, आत्मधर्म अंत में आता है। मनुष्य जीवन का हिसाब इतना ही है! अर्क़ इतना ही है कि मन-वचन-काया दूसरों के लिए वापरो।

नया ध्येय आज का, रीएक्शन पिछले

प्रश्नकर्ता : तो परोपकार के लिए ही जीना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, परोपकार के लिए ही जीना चाहिए। पर यह आप अब ऐसी लाइन तुरंत ही बदलो तो ऐसा करते हुए पिछले रीएक्शन आते हैं। इसलिए फिर आप ऊब जाते हो कि यह तो मुझे अभी भी सहन करना पड़ता है! पर थोड़ा समय सहन करना पड़ेगा, उसके बाद आपको कोई दुःख नहीं रहेगा। पर अब तो नये सिरे से लाईन बाँध रहे हो, इसलिए पिछले रिएक्शन तो आएँगे ही। आज तक जो उलटा किया था, उसके फल तो आएँगे ही न?

अंततः उपकार खुद पर ही करना

हमेशा किसी पर उपकार किया हो, किसी का फ़ायदा किया हो, किसी के लिए जीए हों, उतना हमें लाभ होता है। पर वह भौतिक लाभ होता है। उसका भौतिक फल मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : किसी पर उपकार करने के बज़ाय खुद पर उपकार करें तो?

दादाश्री : बस, खुद पर उपकार करने के लिए ही सब करना है। यदि खुद पर उपकार करे तो उसका कल्याण हो जाए, पर उसके लिए अपने आपको (अपनी आत्मा को) जानना पड़ेगा। तब तक लोगों पर उपकार करते रहना, पर उसका भौतिक फल मिलता रहेगा। हमें खुद को पहचानने के लिए 'हम कौन हैं' यह जानना होगा। वास्तव में हम खुद शुद्धात्मा हैं। आप तो आज तक 'मैं चन्दूभाई हूँ' इतना ही जानते हो न कि दूसरा कुछ जानते हो? यह 'चन्दूभाई' वह 'मैं' ही हूँ, ऐसा कहोगे।' इसका पति हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ, ऐसा सारा सिलसिला! ऐसा ही है न? यही ज्ञान आपके पास है न? उससे आगे गए नही न?

मानवसेवा, सामाजिक धर्म

प्रश्नकर्ता : पर व्यवहार में ऐसा होता है न कि दया भाव रहता

है। सेवा रहती है। किसी के प्रति लगाव रहता है कि कुछ कर पाऊँ, किसी को नौकरी दिलाना, बीमारों को अस्पताल में भर्ती कराना। ये सारी क्रियाएँ एक तरह का व्यवहार धर्म ही हुआ न?

दादाश्री : वे तो सब सामान्य फ़र्ज़ हैं।

प्रश्नकर्ता : तो मानव सेवा वह तो एक प्रकार से व्यावहारिक हुआ, यही समझें न? वह तो व्यवहार धर्म हुआ न?

दादाश्री : वह व्यवहार धर्म भी नहीं, वह तो समाज धर्म कहलाता है। जिस समाज को अनुकूल हो, उसके लोगों को अनुकूल पड़ेगा और वही सेवा किसी और समाज को देने जाएँ, तो वह प्रतिकूल पड़ेगा। इसलिए व्यवहार धर्म कब कहलाता है कि जो सभी को एक जैसा लगे तब! आज तक जो आपने किया, वह समाजसेवा है। हरएक की समाजसेवा अलग तरह की होती है। हरएक समाज अलग तरह का, उसी तरह सेवा भी अलग प्रकार की होती है।

लोकसेवा, बिगिन्स फ्रोम होम

प्रश्नकर्ता : जो लोग लोकसेवा में आए, वे किस लिए आए होंगे?

दादाश्री : वह तो भावना अच्छी। लोगों का किस तरह से भला हो, उसकी इच्छा। मनोभाव अच्छा हो तब न!

वह तो भावना-मनोभाव लोगों के प्रति, कि लोगों को जो दुःख होता है वह नहीं हो, ऐसी भावना है उसके पीछे। ऊँची भावना न बहुत। पर लोक सेवकों का यह मैंने देखा कि सेवकों को घर जाकर पूछते हैं न, तब पीछे धुआँ निकलता है। इसलिए वह सेवा नहीं है। सेवा घर से शुरू होनी चाहिए। बिगिन्स फ्रोम होम। फिर नेबरर्स (पड़ोसी)। बाद में आगे की सेवा। ये तो घर जाकर पूछते हैं तब धुआँ निकलता है।

कैसा लगता है आपको? इसलिए शुरूआत घर से होनी चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : ये भाई कहते हैं कि उनके केस में घर में धुआँ नहीं है।

दादाश्री : इसका अर्थ यह हुआ कि वह सच्ची सेवा है।

करो जनसेवा, शुद्ध नीयत से

प्रश्नकर्ता : लोकसेवा करते-करते उसमें भगवान के दर्शन करके सेवा की हो तो वह यथार्थ फल देगी न?

दादाश्री : भगवान के दर्शन किए हों, तो लोकसेवा में फिर पड़ता नहीं, क्योंकि भगवान के दर्शन होने के बाद कौन छोड़े भगवान को? यह तो लोकसेवा इसके लिए करनी है कि भगवान मिलें, इसलिए। लोकसेवा तो हृदय से होनी चाहिए। हृदयपूर्वक हो, तो सब जगह पहुँचे। लोकसेवा और प्रख्याति दोनों मिले, तो मुश्किल में डाल दे मनुष्य को। ख्याति बिना की लोकसेवा हो, तब सच्ची। ख्याति तो होनेवाली ही है, पर ख्याति से इच्छा रहित हो, ऐसा होना चाहिए।

जनसेवा तो लोग करें ऐसे हैं नहीं। यह तो भीतर छुपा हुआ कीर्ति का लोभ है, मान का लोभ है, सब तरह-तरह के लोभ पड़े हैं, वे करवाते हैं। जनसेवा करनेवाले लोग तो कैसे होते है? वे अपरिग्रही पुरुष होते हैं। यह तो सब नाम बढ़ाने के लिए। धीरे-धीरे 'किसी दिन मंत्री बनूँगा' ऐसा करके जनसेवा करता है। भीतर नीयत चोर है, इसलिए बाहर की मुश्किलें, बिना काम के परिग्रह, वह सभी बंद कर दो तो सब ठीक हो जाएगा। यह तो एक ओर परिग्रही, संपूर्ण परिग्रही रहना है और दूसरी ओर जनसेवा चाहिए। ये दोनों कैसे संभव है?

प्रश्नकर्ता : अभी तो मैं मानवसेवा करता हूँ, घर-घर सबसे भीख माँगकर गरीबों को देता हूँ। इतना मैं करता हूँ अभी।

दादाश्री : वह तो सारा आपके खाते में-बहीखाते में जमा होगा। आप जो देते हो न... ना, ना आप जो बीच में करते हो, उसकी रकम निकालेंगे। ग्यारह गुना रकम करके, फिर उसकी जो दलाली है, वह आपको मिलेगी। अगले भव में दलाली मिलेगी और उसकी शांति रहेगी आपको। यह काम अच्छा करते हो इसलिए अभी शांति रहती है और भविष्य में भी रहेगी। वह काम अच्छा है।

बाकी सेवा तो उसका नाम कि तू काम करता हो, तो मुझे पता भी नहीं चले। उसे सेवा कहते हैं। मूक सेवा होती है। पता चले, उसे सेवा नहीं कहते।

सूरत के एक गाँव में हम गए थे। एक आदमी कहने लगा, 'मुझे समाजसेवा करनी है।' मैंने कहा, 'क्या समाजसेवा तू करेगा?' तब कहता है, 'सेठ लोगों के पास से लाकर लोगों में बाँटता हूँ।' मैंने कहा, 'बाँटने के बाद पता लगाता है कि वे कैसे खर्च करते हैं?' तब कहे, 'वह हमें देखने की क्या ज़रूरत?' फिर उसे समझाया कि भैया! मैं तुझे रास्ता दिखाता हूँ, उस तरह कर। सेठलोगों से पैसा लाता है तो उसमें से उन्हें सौ रुपये का ठेला दिलवा देना। वह हाथ-लारी आती है न, दो पहियेवाली होती है, वह। सौ-डेढ़ सौ या दो सौ रुपये की लारी दिलवा देना और पचास रुपये दूसरे देना और कहना, 'तू साग़-सब्ज़ी लाकर, उसे बेचकर, मुझे मूल रकम रोज़ शाम को वापस दे देना। मुनाफा तेरा और लारी के रोज़ाना इतने पैसे भरते रहना।' इस पर कहने लगा, 'बहुत अच्छा लगा, बहुत अच्छा लगा। आपके फिर सूरत आने से पहले तो पचास-सौ लोगों को इकट्ठा कर दूँगा।' फिर ऐसा कुछ करो न, अभी लारियाँ आदि ला दो इन सभी गरीबों को। उन्हें कुछ बड़ा व्यापार करने की ज़रूरत है? एक लारी दिलवा दो, तो शाम तक बीस रुपये कमा लेंगे। आपको कैसा लगता है? उन्हें ऐसा दिलाएँ तो हम पक्के जैन हैं कि नहीं? ऐसा है न, अगरबत्ती भी जलते-जलते सुगन्धी देकर जलती है, नहीं? सारा रूम सुगंधीवाला कर

जाती है न! तो हमसे सुगंध ही नहीं फैलेगी क्या?

ऐसा क्यों हो हमें? मैं तो पच्चीस-तीस वर्ष की उम्र में भी अहंकार करता था और वह भी विचित्र प्रकार का अहंकार करता था। यह व्यक्ति मुझसे मिले और उसको लाभ नहीं हो तो मेरा मिलना गलत था। इसलिए हरएक मनुष्य को मुझसे लाभ प्राप्त हुआ था। मैं मिला और यदि उसको लाभ नहीं हुआ तो किस काम का? आम का पेड़ क्या कहता है कि मुझसे मिला और आम का मौसम हो और यदि सामनेवाले को लाभ नहीं हुआ तो मैं आम ही नहीं। भले ही छोटा हो तो छोटा, तुझे ठीक लगे वैसा, पर तुझे उसका लाभ तो होगा न। वह आम का पेड़ कोई लाभ नहीं उठाता है। ऐसे कुछ विचार तो होने चाहिए न। यह ऐसा मनुष्यपन क्यों होना चाहिए? ऐसा समझाएँ, तो सब समझदार हैं फिर। यह तो समझ में आ गया, उसने ऐसा किया, चल पड़ी गाड़ी। आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, आप बात करते हैं, ऐसी महाजन की संस्था हर जगह थी।

दादाश्री : पर अभी तो वे भी मुसीबत में पड़े हैं न! अर्थात् किसी का दोष नहीं है। होना था सो हो गया, पर अब ऐसा विचारों से सुधारें तो अब भी सुधर सकता है और बिगड़े हुए को सुधारना, उसीका नाम ही धर्म है। सुधरे हुए को तो सुधारने तैयार होते ही हैं सभी, पर बिगड़ा उसे सुधारना, वह धर्म कहलाता है।

मानवसेवा ही प्रभुसेवा

प्रश्नकर्ता : मानवसेवा, वह तो प्रभुसेवा है न?

दादाश्री : नहीं, प्रभुसेवा नहीं। दूसरों की सेवा कब करते हैं? खुद को भीतर दु:ख होता है। आपको किसी मनुष्य पर दया आए, तब

उसकी स्थिति देखकर आपको भीतर दु:ख होता है और उस दु:ख को मिटाने के लिए आप यह सब सेवा करते है। अर्थात् यह सब खुद का दु:ख मिटाने के लिए है। एक मनुष्य को दया बहुत आती है। वह कहता है कि मैंने दया करके इन लोगों को यह दे दिया, वह दे दिया..., नहीं, अरे, तेरा दु:ख मिटाने के लिए इन लोगों को तू देता है। आपको समझ में आई यह बात? बहुत गहन बात है यह, सतही बात नहीं है यह। खुद के दु:ख को मिटाने के लिए देता है। पर वह चीज़ अच्छी है। किसी को दोगे तो आप पाओगे फिर।

प्रश्नकर्ता : पर जनता जनार्दन की सेवा वही भगवत सेवा है या फिर अमूर्त को मूर्त रूप देकर पूजा करना, वह?

दादाश्री : जनता जनार्दन की सेवा करने पर हमें संसार के सभी सुख मिलते हैं, भौतिक सुख, और धीरे-धीरे, स्टेप बाय स्टेप, मोक्ष की तरफ जाते हैं। पर वह हरएक अवतार में ऐसा नहीं होता है। किसी ही अवतार में संयोग मिल जाता है। बाकी, हरएक अवतार में होता नहीं, इसलिए वह सिद्धांत रूप नहीं है।

...कल्याण की श्रेणियाँ ही भिन्न

समाज कल्याण करते हैं, वह कुछ जगत् का कल्याण किया नहीं कहलाएगा। वह तो एक सांसारिक भाव है। वह सब समाज कल्याण कहलाता है। वह जितना, जिससे हो पाए उतना करते हैं, वह सब स्थूल भाषा कहलाती है, और जगत् कल्याण करना, वह तो सूक्ष्म भाषा, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भाषा है। खाली ऐसे सूक्ष्मतम भाव ही होते हैं अथवा उसके छींटे ही होते हैं।

समाजसेवा प्रकृति स्वभाव

समाजसेवा की तो जिसे धुन लगी है, इसलिए वह घर में बहुत

ध्यान नहीं देता और बाहर के लोगों की सेवा में वह पड़ा हुआ है, वह समाजसेवा कहलाती है। और ये अन्य तो खुद के आंतरिक भाव कहलाते हैं। वे भाव तो खुद को आते ही रहते हैं। किसी पर दया आए, किसी के प्रति भावनाएँ होती है और ऐसा सभी तो खुद की प्रकृति में लाया होता है, पर अंत में यह सब प्रकृति धर्म ही है। वह समाजसेवा भी प्रकृति धर्म है, उसे प्रकृति स्वभाव कहते हैं कि इसका स्वभाव ऐसा है, उसका स्वभाव ऐसा है। किसी का दु:ख देने का स्वभाव होता है, किसी का सुख देने का स्वभाव होता है। इन दोनों के स्वभाव प्रकृति स्वभाव कहलाते है, आत्म स्वभाव नहीं। प्रकृति में जैसा माल भरा हुआ है, वैसा उनका माल निकलता है।

सेवा-कुसेवा, प्राकृत स्वभाव

यह आप जो सेवा करते हो, वह प्रकृति स्वभाव है और एक मनुष्य कुसेवा करता है, वह भी प्रकृति स्वभाव है। इसमें आपका पुरुषार्थ नहीं है और उसका भी पुरुषार्थ नहीं है, पर मन से ऐसा मानते हैं कि मैं करता हूँ। अब 'मैं करता हूँ' यही भ्रांति है। यहाँ यह 'ज्ञान' देने के बाद भी आप सेवा तो करनेवाले ही हैं क्योंकि प्रकृति ऐसी लाए हैं, पर वह सेवा फिर शुद्ध सेवा होगी। अभी शुभ सेवा हो रही है। शुभ सेवा अर्थात् बंधनवाली सेवा, सोने की बेड़ी भी बंधन ही है न! आत्मज्ञान के बाद सामनेवाले मनुष्य को चाहे कुछ भी हो, पर आपको दु:ख होता नहीं और उसका दु:ख दूर होता है। फिर आपको करुणा रहेगी। ये अभी तो आपको दया रहती है कि बेचारे को कितना दु:ख होता होगा? कितना दु:ख होता होगा? उसकी आपको दया रहती है। वह दया हमेशा हमें दु:ख देती है। दया हो, वहाँ अहंकार होता ही है। दया के भाव के बिना प्रकृति सेवा करती ही नहीं और आत्मज्ञान के बाद आपको करुणा भाव रहेगा।'

सेवाभाव का फल भौतिक सुख हैं और कुसेवाभाव का फल

भौतिक दु:ख हैं। सेवा भाव से खुद का 'मैं' नहीं मिलता। पर जब तक 'मैं' न मिले, तब तक ओब्लाइजिंग नेचर रखना।

सच्चा समाज सेवक

आप किस की मदद करते हो?

प्रश्नकर्ता : समाज की सेवा में बहुत समय देता हूँ।

दादाश्री : समाजसेवा तो कई प्रकार की होती है। जिस समाजसेवा में, जिसमें किंचित् मात्र 'समाजसेवक हूँ' ऐसा भान नहीं रहे न, वह समाजसेवा सच्ची।

प्रश्नकर्ता : वह बात ठीक है।

दादाश्री : बाकी, समाजसेवक तो जगह-जगह पर हरएक विभाग में दो-दो, चार-चार होते हैं। सफेद टोपी डालकर घूमते रहते हैं, समाजसेवक हूँ। पर वह भान भूल जाए, तब वह सच्चा सेवक!

प्रश्नकर्ता : कुछ अच्छा काम करें, तो भीतर अहम् आ जाता है कि मैंने किया।

दादाश्री : वह तो आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे भुलाने के लिए क्या करना?

दादाश्री : पर यह, समाजसेवक हूँ, उसका अहंकार नहीं आना चाहिए। अच्छा काम करता है, तो उसका अहंकार आता है, तो फिर आपके ईष्टदेव या भगवान को जिन्हें मानते हों, उनसे कहना कि हे भगवान, मुझे अहंकार नहीं करना है, फिर भी हो जाता है, मुझे क्षमा करना! इतना ही करना। होगा इतना?

प्रश्नकर्ता : होगा।

दादाश्री : इतना करना न!

समाजसेवा का अर्थ क्या? वह काफी कुछ 'माइ' तोड़ देती है। 'माइ' (मेरा) यदि संपूर्ण समाप्त हो जाए तो खुद परमात्मा है! उसे फिर सुख बरतेगा ही न!

सेवा में अहंकार

प्रश्नकर्ता : तो इस जगत् के लिए हमें कुछ भी करने को रहता नहीं है?

दादाश्री : आपको करने का था ही नहीं, यह तो अहंकार खड़ा हुआ है। ये मनुष्य अकेले ही अहंकार करते हैं, कर्त्तापन का।

प्रश्नकर्ता : ये बहनजी डॉक्टर हैं। एक गरीब 'पेशन्ट' आया, उसके प्रति अनुकंपा होती है, सुश्रूषा करती हैं। आपके कहे अनुसार तो फिर अनुकंपा करने का कोई सवाल ही नहीं रहता है न?

दादाश्री : वह अनुकंपा भी कुदरती है, पर फिर अहंकार करता है कि मैंने कैसी अनुकंपा की! अहंकार नहीं करे तो कोई हर्ज नहीं। पर अहंकार किए बगैर रहता नहीं न!

सेवा में समपर्णता

प्रश्नकर्ता : इस संसार की सेवा में परमात्मा की सेवा का भाव रखकर सेवा करें, वह फ़र्ज़ में आता है न?

दादाश्री : हाँ, उसका फल पुण्य मिलता है, मोक्ष नहीं मिलता।

प्रश्नकर्ता : उसका श्रेय साक्षात्कारी परमात्मा को सौंप दें, फिर भी मोक्ष नहीं मिलेगा?

दादाश्री : ऐसे फल सौंप दिया नहीं जाता है न किसी से।

प्रश्नकर्ता : मानसिक समर्पण करें तो?

दादाश्री : वह समर्पण करे तो भी कोई फल लेता नहीं है और कोई देता भी नहीं है। वे तो केवल बातें ही हैं। सच्चा धर्म तो 'ज्ञानी पुरुष' आत्मा प्रदान करें, तभी से अपने आप चलता रहता है, और व्यवहार धर्म तो हमें करना पड़ता है। सीखना पड़ता है।

भौतिक समृद्धि, बाय प्रोडक्शन में

प्रश्नकर्ता : भौतिक समृद्धि प्राप्त करने की इच्छा-प्रयत्न आध्यात्मिक विकास में बाधक होती है क्या? और बाधक होती है तो कैसे और बाधक नहीं हो तो कैसे?

दादाश्री : भौतिक समृद्धि प्राप्त करनी हो तो हमें इस दिशा में जाना, आध्यात्मिक समृद्धि प्राप्त करनी हो तो इस दूसरी दिशा में जाना। हमें एक दिशा में जाना है, उसके बजाय हम यों दूसरी दिशा में जाएँ तो बाधक होगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह बाधक कहलाएगा!

दादाश्री : अर्थात् पूर्णतया बाधक है। आध्यात्मिक यह दिशा है तो भौतिक सामनेवाली दिशा है।

प्रश्नकर्ता : पर भौतिक समृद्धि के बिना चले किस तरह?

दादाश्री : भौतिक समृद्धि इस दुनिया में कोई कर पाया है क्या? सभी लोग भौतिक समृद्धि के पीछे पड़े हैं। हो गई है किसी की?

प्रश्नकर्ता : थोड़े, कुछ की ही होती है, सभी की नहीं होती।

दादाश्री : मनुष्य के हाथ में सत्ता नहीं है वह। जहाँ सत्ता नहीं है, वहाँ व्यर्थ शोर मचाएँ, उसका अर्थ क्या है? मीनिंगलेस!

प्रश्नकर्ता : जब तक उसकी कोई कामना है, तब तक अध्यात्म में किस तरह जा सकेंगे?

दादाश्री : हाँ, कामना होती है, वह ठीक है। कामना होती है, पर हमारे हाथ में सत्ता नहीं है वह।

प्रश्नकर्ता : वह कामना किस तरह मिटे?

दादाश्री : उसकी कामना के लिए ऐसा सब आता ही है फिर। आपको बहुत उसकी माथापच्ची नहीं करनी। आध्यात्मिक करते रहो। यह भौतिक समुद्धि तो बाय प्रोडक्ट है। आप आध्यात्मिक प्रोडक्शन शुरू करो, इस दिशा में जाओ और आध्यात्मिक प्रोडक्शन शुरू करो तो भौतिक समृद्धियाँ, बाय प्रोडक्ट, आपको फ्री ऑफ कोस्ट मिलेंगी।

प्रश्नकर्ता : अध्यात्म तरह से जाना हो तो, क्या कहना चाहते हो? किस प्रकार जाना?

दादाश्री : नहीं, पर पहले यह समझ में आता है कि अध्यात्म का आप प्रोडक्शन करो तो भौतिक बाय प्रोडक्ट है? ऐसा आपकी समझ में आता है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा मानता हूँ कि आप कहते हैं, वह मुझे समझ में नहीं आता है।

दादाश्री : इसलिए मानो तो भी यह सब बाय प्रोडक्ट है। बाय प्रोडक्ट यानी फ्री ऑफ कोस्ट। इस संसार के विनाशी सुख सारे फ्री ऑफ कोस्ट मिले हुए हैं। आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने जाते, रास्ते में यह बाय प्रोडक्शन मिला है।

प्रश्नकर्ता : हमने ऐसे कई लोग देखे हैं कि जो अध्यात्म में जाते नहीं हैं, पर भौतिक रूप से बहुत समृद्ध हैं और उसमें वे सुखी हैं।

दादाश्री : हाँ, वे अध्यात्म में जाते नज़र नहीं आते, मगर उसने जो अध्यात्म किया था, उसका फल है यह।

प्रश्नकर्ता : यानी इस जन्म में अध्यात्म करे, तो अगले जन्म में भौतिक सुख मिलेगा?

दादाश्री : हाँ, उसका फल अगले भव में मिलेगा आपको। फल दिखता है आज और आज अध्यात्म में नहीं भी हों।

कार्य का हेतु, सेवा या लक्ष्मी

हरएक कार्य का हेतु होता है कि किस हेतु से यह कार्य किया जा रहा है। उसमें उच्च हेतु यदि तय किया जाए, अर्थात् क्या कि यह अस्पताल शुरू करना है, मतलब पेशन्ट कैसे स्वास्थ्य प्राप्त करें, कैसे सुखी हों, कैसे वे लोग आनंद में आएँ, कैसे उसकी जीवनशक्ति बढ़े, ऐसा अपना उच्च हेतु तय किया हो और सेवाभाव से ही काम किया जाए, तब उसका बाय-प्रोडक्शन क्या? लक्ष्मी! इसलिए लक्ष्मी वह बाय प्रोडक्ट है, उसे प्रोडक्शन मत मानना। सारा संसार लक्ष्मी का ही प्रोडक्शन करता है, इसलिए फिर उसे बाय प्रोडक्शन का लाभ मिलता नहीं है।

इसलिए, सेवाभाव अकेला ही आप नक्की करो तो उसमें बाय प्रोडक्शन में लक्ष्मी तो फिर अधिक आती है। इसलिए लक्ष्मी को यदि बाय प्रोडक्ट में ही रहने दें तो लक्ष्मी अधिक आती है, पर यह तो लक्ष्मी के हेतु से ही लक्ष्मी का प्रोडक्शन करते हैं, इसलिए लक्ष्मी आती नहीं। इसलिए हम आपको हेतु कहते हैं कि यह हेतु रखो, 'निरंतर सेवाभाव', तो बाय प्रोडक्ट अपने आप ही आता रहेगा। जैसे बाय प्रोडक्ट में कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती, खर्चा नहीं करना पड़ता, वह फ्री ऑफ कोस्ट होता है, वैसे यह लक्ष्मी भी फ्री ऑफ कोस्ट मिलती है। आपको ऐसी लक्ष्मी चाहिए कि ऑन की लक्ष्मी चाहिए? ऑन की लक्ष्मी नहीं

चाहिए? तब ठीक है! यह फ्री ऑफ कोस्ट मिले, वह कितनी अच्छी!

इसलिए सेवाभाव निश्चित करो, मनुष्य मात्र की सेवा। क्योंकि 'हमने अस्पताल खोला' यानी हम जो विद्या जानते हैं, उस विद्या का सेवाभाव में उपयोग करना, यही हमारा हेतु होना चाहिए। उसके फल स्वरूप दूसरी चीज़ें तो फ्री ऑफ कोस्ट मिलती रहेंगी और लक्ष्मी की तो फिर कभी कमी ही नहीं रहेगी, और जो लक्ष्मी के लिए ही करने गए, उन्हें घाटा हुआ। हाँ, लक्ष्मी के लिए ही कारखाना बनाया तो बाय प्रोडक्ट तो रहा ही नहीं न! क्योंकि लक्ष्मी ही बाय प्रोडक्ट है, बाय प्रोडक्शन की! इसलिए हमें प्रोडक्शन तय करना है, फिर बाय प्रोडक्शन फ्री ऑफ कोस्ट मिलता रहेगा।

जगत् कल्याण, वही प्रोडक्शन

आत्मा प्राप्त करने के लिए जो किया जाता है, वह प्रोडक्शन है और उसके कारण बाय प्रोडक्ट मिलता है और संसार की सारी ज़रूरतें प्राप्त होती हैं। मैं अपना एक ही तरह का प्रोडक्शन रखता हूँ, 'जगत् परम शांति प्राप्त करे और कितने ही मोक्ष प्राप्त करें।' यह मेरा प्रोडक्शन और उसका बाय प्रोडक्शन मुझे मिलता ही रहता है। यह चाय-पानी हमें, आपसे कुछ अलग तरह के मिलते हैं। उसका क्या कारण है? आपकी तुलना में मेरा प्रोडक्शन उच्च कोटि का है। ऐसे आपका प्रोडक्शन उच्च कोटि का हो, तो बाय प्रोडक्शन भी उच्च कोटि का आएगा। हर एक कार्य का हेतु होता है। यदि सेवाभाव का हेतु होगा, तो लक्ष्मी 'बाय प्रोडक्ट' में मिलेगी ही।

सेवा परोक्ष रूप से भगवान की

दूसरा सारा प्रोडक्शन बाय प्रोडक्ट होता है। उसमें आपकी ज़रूरत की सारी चीज़ें मिलती रहती हैं और वे इज़ीली मिलती हैं। देखो न, यह प्रोडक्शन पैसों का किया, इसलिए आज पैसे इज़ीली मिलते नहीं।

भागदौड़, हड़बड़ाते, हड़बड़ाते घूमते हों, ऐसे घूमते हैं और मुँह पर एरंडी का तेल चुपड़कर घूमते हों, ऐसे दिखते हैं। घर का सुंदर खाने-पीने का है, कैसी सुविधा है, रास्ते कितने अच्छे है, रास्ते पर चलें तो पैर भी धूलवाले नहीं होते! इसलिए मनुष्यों की सेवा करो। मनुष्यों में भगवान विराजमान हैं। भगवान भीतर ही बेठै हैं। बाहर भगवान खोजने जाएँ तो वे मिलें ऐसा नहीं है।

आप मनुष्यों के डॉक्टर हो, इसलिए आपको मनुष्यों की सेवा करने को कहता हूँ। जानवरों के डॉक्टर हों, तो उनको जानवरों की सेवा करने को कहूँ। जानवरों में भी भगवान विराजमान हैं,पर इन मनुष्यों में भगवान विशेष प्रकट हुए हैं!

सेवा-परोपकार से आगे मोक्षमार्ग

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग, समाजसेवा के मार्ग से बढ़कर कैसे है? यह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : समाज सेवक से हम पूछें कि आप कौन हो? तब कहें, मैं समाजसेवक हूँ। क्या कहता है? यही कहता है न या दूसरा कुछ कहता है?

प्रश्नकर्ता : यही कहता है।

दादाश्री : यानी 'मैं समाज सेवक हूँ', बोलना, वह इगोइज़म है और इस व्यक्ति से कहूँ कि, 'आप कौन है?' तब कहेंगे, 'बाहर पहचान के लिए चन्दूभाई और वास्तव में तो मैं शुद्धात्मा हूँ।' तो वह इगोइज़म बिना का है, विदाउट इगोइज़म।

समाजसेवक का इगो (अहंकार) अच्छे कार्य के लिए है, पर है इगो। बुरे कार्य के लिए इगो हो, तब 'राक्षस' कहलाता है। अच्छे कार्य के लिए इगो हो, तब देव कहलाता है। इगो यानी इगो। इगो यानी भटकते

रहना और इगो खतम हो गया। तो फिर यहीं मोक्ष हो जाए।

'मैं कौन हूँ' जानना, वह धर्म

प्रश्नकर्ता : हरएक जीव को क्या करना चाहिए? उसका धर्म क्या है?

दादाश्री : जो कर रहा है, वह उसका ही धर्म है। पर हम कहते हैं कि मेरा धर्म, इतना ही। जिसका हम इगोइज़म करते हैं कि यह मैंने किया। इसलिए हमें अब क्या करना चाहिए कि 'मैं कौन हूँ' इतना जानना, उसके लिए प्रयत्न करना, तो सारे पज़ल सॉल्व हो जाएँ। फिर पज़ल खड़ा नहीं होगा और पज़ल खड़ा नहीं हो, तो स्वतंत्र होने लगें।

लक्ष्मी, वह तो बाय प्रोडक्शन में

प्रश्नकर्ता : कर्तव्य तो हरएक मनुष्य का, फिर वह वकील हो या डॉक्टर हो, पर कर्तव्य तो यही होता है न कि मनुष्य मात्र का भला करना?

दादाश्री : हाँ, पर यह तो 'भला करना है' ऐसा निश्चय किए बगैर ही बस किया करते है, कोई डिसीजन लिया नहीं। कोई भी हेतु निश्चित किए बिना ऐसे ही ऐसे गाड़ी चलती रहती है। किस गाँव जाना है, इसका ठिकाना नहीं है और कौन से गाँव उतरना है, उसका भी ठिकाना नहीं है। रास्ते में चाय-नाश्ता कहाँ लेना है, उसका भी ठिकाना नहीं। बस, दौड़ते रहते हैं। इसलिए सब उलझा है। हेतु निश्चित करने के बाद सारे कार्य करने चाहिए।

हमें तो खाली हेतु ही बदलना है, दूसरा कुछ करना नहीं है। पंप के इंजन का एक पट्टा यहाँ दें तो पानी निकले और इस और पट्टा दिया तो धान में से चावल निकलें। अर्थात् खाली पट्टा देने में ही फर्क है। हेतु निश्चित करना है और फिर वह हेतु लक्ष में रहना चाहिए। बस, दूसरा

कुछ भी नहीं। लक्ष्मी लक्ष में रहनी नहीं चाहिए।

'खुद की' सेवा में समाए सर्व धर्म

दो प्रकार के धर्म, तीसरे प्रकार का कोई धर्म होता नहीं है। जिस धर्म में जगत् की सेवा है, वह एक प्रकार का धर्म और जहाँ खुद की (स्व की-आत्मा की) सेवा है, वह दूसरे प्रकार का धर्म। खुद की सेवावाले होम डिपार्टमेन्ट में (आत्मस्वरूप में) जाए और इस संसार की सेवा करे, उसे उसका संसारी लाभ मिलता है, या भौतिक मज़े करते हैं। और जिसमें जगत् की किसी भी प्रकार की सेवा समाती नहीं, जहाँ खुद की सेवा का समावेश नहीं होता है, वे सारे एक तरह के सामाजिक भाषण हैं! और खुद अपने को भयंकर नशा चढ़ानेवाले हैं। जगत् की कोई भी सेवा होती हो, तो वहाँ धर्म है। जगत् की सेवा न हो, तो खुद की सेवा करो। जो खुद की सेवा करता है, वह जगत् की सेवा करने से भी बढ़कर है। क्योंकि खुद की सेवा करनेवाला किसी को भी दुःख नहीं देता!

प्रश्नकर्ता : पर खुद की सेवा करने का सूझना चाहिए न?

दादाश्री : वह सूझना आसान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे करें?

दादाश्री : वह तो खुद की सेवा करते हों, ऐसे ज्ञानी पुरुष से पूछना कि साहिब, आप औरों की सेवा करते हैं या खुद की? तब साहिब कहें कि, 'हम खुद की करते हैं।' तब हम उनसे कहें, 'मुझे ऐसा रास्ता दिखाइए!'

'खुद की सेवा' के लक्षण

प्रश्नकर्ता : खुद की सेवा के लक्षण कौन से हैं?

दादाश्री : 'खुद की सेवा' अर्थात् किसी को दुःख न दे, वह

सबसे पहला लक्षण। उसमें सभी चीज़ें आ जाती हैं। उसमें वह अब्रह्मचर्य का भी सेवन नहीं करता। अब्रह्मचर्य का सेवन करना मतलब किसी को दु:ख देने के समान है। अगर ऐसा मानो कि राज़ी-खुशी से अब्रह्मचर्य हुआ हो, तब भी उसमें कितने जीव मर जाते हैं! इसलिए वह दु:ख देने के समान है। इसलिए उससे सेवा ही बंद हो जाती है। फिर झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, हिंसा नहीं करते, धन जमा नहीं करते। परिग्रह करना, पैसे इकट्ठे करना वह हिंसा ही है। इसलिए दूसरों को दु:ख देता है, इसमें सब आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : खुद की सेवा के दूसरे लक्षण कौन-कौन से हैं? खुद की सेवा कर रहा है, ऐसा कब कहलाता है?

दादाश्री : 'खुद की सेवा' करनेवाले को भले ही इस संसार के सारे लोग दु:ख दें, पर वह किसी को भी दु:ख नहीं देता। दु:ख तो देता ही नहीं, पर बुरे भाव भी नहीं करता कि तेरा बुरा हो! 'तेरा भला हो' ऐसे कहता है।

हाँ, फिर भी सामनेवाला बोले तो हर्ज नहीं है। सामनेवाला बोले कि आप नालायक हो, बदमाश हो, आप दु:ख देते हो, उसका हमें हर्ज नहीं। हम क्या करते हैं, यही देखना है। सामनेवाला तो रेडियो की तरह बोलता ही रहेगा, जैसे रेडियो बज रहा हो वैसा!

प्रश्नकर्ता : जीवन में सभी लोग हमें दु:ख दें, फिर भी हम सहन करें, ऐसा तो हो नहीं सकता। घर के लोग ज़रा सा अपमानजनक वर्तन करें, वह भी सहन नहीं होता तो?

दादाश्री : तब क्या करना? इसमें न रहें तो किस में रहें? यह कहो मुझे। यह मैं कहता हूँ, वह लाइन पसंद नहीं आए तो उस व्यक्ति को किस में रहना? सेफसाइडवाली है कोई जगह? कोई हो तो मुझे दिखाओ।

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा नहीं। पर हमारा 'इगो' तो है ही न?

दादाश्री : जन्म से ही सभी में 'इगो' ही रोकता है, पर हमें अटकना नहीं है। 'इगो' है, वह चाहे जैसे नाचे। 'हमें' नाचने की ज़रूरत नहीं है। हम उससे अलग हैं।

उसके सिवाय दूसरे, सारे धार्मिक मनोरंजन

अर्थात् दो ही धर्म हैं, तीसरा धर्म नहीं। दूसरे तो ओर्नामेन्ट हैं! ओर्नामेन्ट पोर्शन और लोग 'वाह-वाह' करते हैं!

जहाँ सेवा नहीं है, किसी भी प्रकार की सेवा नहीं है, जगत् सेवा नहीं है, वे सब धार्मिक मनोरंजन हैं और ओर्नामेन्टल पोर्शन है सभी।

बुद्धि का धर्म तब तक स्वीकारा जाता है, जब तक बुद्धि सेवाभावी हो, जीवों को सुख पहुँचानेवाली हो, ऐसी बुद्धि हो वह अच्छी। बाकी दूसरी बुद्धि बेकार है। दूसरी सब बुद्धि बाँधती है उलटा। बाँधकर मार खिलाती रहती है और जहाँ देखो, वहाँ फायदा-नुकसान देखती है। बस में घुसते ही पहले देख ले कि जगह कहाँ है? इस तरह बुद्धि यहाँ-वहाँ भटकाती रहती है। दूसरों की सेवा करे, वह बुद्धि अच्छी। नहीं तो खुद की सेवा जैसी बुद्धि और कोई नहीं। जो खुद की सेवा करता है, वह सारे संसार की सेवा कर रहा है।

जगत् में किसी को दु:ख नहीं हो

इसलिए हम सभी से कहते हैं कि भई! सुबह पहले बाहर निकलते समय और कुछ नहीं आता हो तो इतना बोलना 'मन-वचन-काया से इस जगत् में किसी भी जीव को किंचित् मात्र दु:ख न हो।' ऐसे पाँच बार बोलकर निकलना। बाकी जिम्मेदारी मेरी! जा, दूसरा कुछ नहीं आएगा तो मैं देख लूँगा! इतना बोलना न! फिर किसी को दु:ख हो गया, वह मैं देख लूँगा। पर इतना तू बोलना। इसमें हर्ज हैं?

प्रश्नकर्ता : इसमें कोई हर्ज नहीं है।

दादाश्री : तू बोलना ज़रूर। तब वह कहें कि 'मुझसे दु:ख दे दिया जाए तो? वह तुझे नहीं देखना है। वह मैं हाईकोर्ट में सब कर लूँगा। वह वकील को देखना है न? वो मैं कर दूँगा सब।' तू मेरा यह वाक्य बोलना न सुबह में पाँच बार! हर्ज है इसमें? कुछ कठिनाई है इसमें? सच्चे दिल से 'दादा भगवान' को याद करके बोले न, फिर हर्ज क्या है?

प्रश्नकर्ता : हम ऐसा ही करते हैं।

दादाश्री : बस, वही करना। दूसरा कुछ करने जैसा नहीं है इस दुनिया में।

संक्षिप्त में, व्यवहार धर्म

संसार के लोगों को व्यवहार धर्म सिखाने के लिए हम कहते हैं कि परानुग्रही बन। खुद के लिए विचार ही न आए। लोक कल्याण के लिए परानुग्रही बन। यदि अपने खुद के लिए तू खर्च करेगा तो वह गटर में जाएगा और औरों के लिए कुछ भी खर्च करना वह आगे का एडजस्टमेन्ट है।

शुद्धात्मा भगवान क्या कहते है कि जो दूसरों का सँभालता है, उसका मैं सँभाल लेता हूँ और जो खुद का ही सँभालता है, उसे मैं उसीके ऊपर छोड़ देता हूँ।

संसार का काम करो, आपका काम होता ही रहेगा। जगत् का काम करोगे, तो आपका काम अपने आप होता रहेगा और तब आपको हैरानी होगी।

संसार का स्वरूप कैसा है? जगत् के जीव मात्र में भगवान रहे हुए हैं, इसलिए किसी भी जीव को कुछ भी त्रास दोगे, दु:ख दोगे तो

अधर्म खड़ा होगा। किसी भी जीव को सुख दोगे तो धर्म खड़ा होगा। अधर्म का फल आपकी इच्छा के विरुद्ध है और धर्म का फल आपकी इच्छानुसार है।

'रिलेटिव धर्म' है, वह संसार मार्ग है। समाजसेवा का मार्ग है। मोक्षमार्ग समाजसेवा से परे है, स्व-रमणता का है।

धर्म की शुरूआत

मनुष्य ने जब से किसी को सुख पहुँचाना शुरू किया तब से धर्म की शुरूआत हुई। खुद का सुख नहीं, पर सामनेवाले की अड़चन कैसे दूर हो, यही रहा करे वहाँ से कारुण्यता की शुरूआत होती है। हमें बचपन से ही सामनेवाले की अड़चन दूर करने की पड़ी थी। खुद के लिए विचार भी नहीं आए, वह कारुण्यता कहलाती है। उससे ही 'ज्ञान' प्रकट होता है।

रिटायर होनेवाला हो, तब ओनरी प्रेसीडन्ट होता है। ओनरी वह होता है। अरे, मुए! आफतें क्यों मोल ले रहा है? अब रिटायर होनेवाला है, तब भी? आफतें ही खड़ी करता है। ये सभी आफतें खड़ी की हैं।

और यदि सेवा नहीं हो पाए तो किसी को दु:ख न हो ऐसा देखना चाहिए। भले ही नुकसान कर गया हो। क्योंकि वह पूर्व का कुछ हिसाब होगा। पर हमें उसे दु:ख नहीं हो ऐसा करना चाहिए।

बस, यही सीखने जैसा

प्रश्नकर्ता : दूसरों को सुख देकर सुखी होना वह?

दादाश्री : हाँ, बस इतना ही सीखना न! दूसरा सीखने जैसा ही नहीं है। दुनिया में और कोई धर्म ही नहीं है। यह इतना ही धर्म है, दूसरा कोई धर्म नहीं है। दूसरों को सुख दो, उसमें ही सुखी होओगे।

यह आप व्यापार-धंधा करते हो, तब कुछ कमाते हों, तो किसी गाँव में कोई दुखी हो तो उसे थोड़ा अनाज-पानी दे दें, बेटी ब्याहते समय कुछ रकम दे दें। ऐसे उसकी गाड़ी राह पर ला देनी चाहिए न! किसी के दिल को ठंडक पहुँचाएँ, तो भगवान हमारे दिल को ठंडक देगा।

ज्ञानी दें, गारन्टी लेख

प्रश्नकर्ता : दिल को ठंडक पहुँचाने जाएँ तो आज जेब कट जाती है।

दादाश्री : जेब भले ही कट जाए। वह पिछला हिसाब होगा जो चुक रहा है। पर आप अभी ठंडक देंगे तो उसका फल तो आएगा ही, उसकी सौ प्रतिशत गारन्टी लेख भी कर दूँ। यह हमने दिया होगा, इसलिए हमें आज सुख आता है। मेरा धंधा ही यह है कि सुख की दुकान खोलनी। हमें दु:ख की दुकान नहीं खोलनी। सुख की दुकान, फिर जिसे चाहिए वह सुख ले जाए और कोई दु:ख देने आए तो हम कहें, 'ओहोहो, अभी बाकी है मेरा। लाओ, लाओ। उसे हम एक और रख छोड़ें। अर्थात् दु:ख देने आएँ तो ले लें। हमारा हिसाब है, तो देने तो आएँगे न? नहीं तो मुझे तो कोई दु:ख देने आता नहीं है।

इसलिए सुख की दुकान ऐसी खोलो कि बस सभी को सुख देना। दु:ख किसी को देना नहीं और दु:ख देनेवाले को तो किसी दिन कोई चाकू मार देता है न? वह राह देखकर बैठा होता है। यह जो बैर की वसूली करते हैं न, वे यों ही बैर वसूल नहीं करते। दु:ख का बदला लेते हैं।

सेवा करें तो सेवा मिलती है

इस दुनिया में सर्व प्रथम सेवा करने योग्य साधन हों, तो वे हैं माँ-बाप।

माँ-बाप की सेवा करें, तो शांति जाती नहीं है। पर आज सच्चे दिल से माँ-बाप की सेवा नहीं करते हैं। तीस साल का हुआ और 'गुरु' (पत्नी) आए। वे कहते हैं कि मुझे नये घर में ले जाओ। गुरु देखें हैं आपने? पच्चीसवें, तीसवें साल में 'गुरु' मिल आते हैं और 'गुरु' मिले, तो बदल जाता है। गुरु कहें कि माताजी को आप पहचानते ही नहीं। वह एक बार नहीं सुनता। पहली बार तो नहीं सुनता पर दो-तीन बार कहे, तो फिर पटरी बदल लेता है।

बाकी, माँ-बाप की शुद्ध सेवा करे न, उसे अशांति होती नहीं ऐसा यह जगत् है। यह जगत् कुछ निकाल फेंकने जैसा नहीं है। तब लोग पूछते हैं न, लड़कों का ही दोष न, लड़के सेवा नहीं करते माँ-बाप की। उसमें माँ-बाप का क्या दोष? मैंने कहा कि उन्होंने माँ-बाप की सेवा नहीं की थी, इसलिए उन्हें प्राप्त नहीं होती। अर्थात् यह विरासत ही गलत है। अब नये सिरे से विरासत के रूप में चले तो अच्छा होगा।

इसलिए मैं ऐसा करवाता हूँ, हर एक घर में। लड़के सभी ऑलराइट हो गए है। माँ-बाप भी ऑलराइट और लड़के भी ऑलराइट!

बुज़ुर्गों की सेवा करने से अपना यह विज्ञान विकसित होता है। कहीं मूर्तियों की सेवा होती है? मूर्तियों के क्या पैर दुखते हैं? सेवा तो अभिभावक हों, बुज़ुर्ग या गुरु हों, उनकी करनी होती है।

सेवा का तिरस्कार करके, धर्म करते हैं?

माँ-बाप की सेवा करना वह धर्म है। वह तो चाहे कैसे भी हिसाब हो, पर यह सेवा करना हमारा धर्म है और जितना हमारे धर्म का पालन करेंगे, उतना सुख हमें उत्पन्न होगा। बुज़ुर्गों की सेवा तो होती है, साथ-साथ सुख भी उत्पन्न होता है। माँ-बाप को सुख दें, तो हमें सुख उत्पन्न होता है। माँ-बाप को सुखी करें, वे लोग सदैव, कभी भी दुखी होते ही नहीं है।

एक व्यक्ति मुझे एक बड़े आश्रम में मिले। मैंने पूछा, 'आप यहाँ कहाँ से?' तब उसने कहा कि मैं इस आश्रम में पिछले दस साल से रहता हूँ।' तब मैंने उनसे कहा, 'आपके माँ-बाप गाँव में बहुत गरीबी में अंतिम अवस्था में दुखी हो रहे हैं।' इस पर उसने कहा कि, 'उसमें मैं क्या करूँ? मैं उनका करने जाऊँ, तो मेरा धर्म करने का रह जाए।' इसे धर्म कैसे कहें? धर्म तो उसका नाम कि माँ-बाप से बात करें, भाई से बात करें, सभी से बात करें। व्यवहार आदर्श होना चाहिए। जो व्यवहार खुद के धर्म का तिरस्कार करे, माँ-बाप के सबंध का तिरस्कार करे, उसे धर्म कैसे कहा जाए?

आपके माँ-बाप हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : माँ है।

दादाश्री : अब सेवा करना, अच्छी तरह। बार-बार लाभ नहीं मिलेगा और कोई मनुष्य कहे कि, 'मैं दुखी हूँ' तो मैं कहूँगा कि तेरे माता-पिता की सेवा कर, अच्छी तरह से। तो संसार के दुःख तुझ पर नहीं पड़ेंगे। भले ही पैसेवाला नहीं बनेगा, पर दुःख तो नहीं पड़ेगा। फिर धर्म होना चाहिए। इसे धर्म ही कैसे कहें?

मैंने भी माताजी की सेवा की थी। बीस साल की उम्र थी अर्थात् जवानी की उमर थी। इसलिए माँ की सेवा हो पाई। पिताजी को कंधा देकर ले गया था, उतनी सेवा हुई थी। फिर हिसाब मिल गया कि ऐसे तो कितने पिताजी हो गए, अब क्या करेंगे? तब जवाब आया, 'जो हैं, उनकी सेवा कर।' फिर जो चले गए, वे गोन (गए)। पर अभी तो जो हैं, उनकी सेवा कर, न हों, उनकी चिंता मत करना। सभी बहुत हो गए। भूले वहाँ से फिर से गिनो। माँ-बाप की सेवा, वह प्रत्यक्ष रोकड़ा है। भगवान दिखते नहीं, ये तो दिखते हैं। भगवान कहाँ दिखते हैं? और माँ-बाप तो दिखते हैं।

खरी ज़रूरत, बूढ़ों को सेवा की

अभी तो यदि कोई ज्यादा से ज्यादा दुखी होंगे तो एक तो साठ-पैसठ वर्ष की उमर के बूढ़े लोग बहुत दुखी हैं आजकल। पर वे किसे कहें? बच्चे सुनते नहीं। पैबंद बहुत हो गए है, पुराना ज़माना और नया ज़माना। बूढ़ा पुराना ज़माना छोड़ता नहीं है। मार खाए, फिर भी नहीं छोड़ता।

प्रश्नकर्ता : पैंसठ साल में हर एक की यही हालत रहती है न!

दादाश्री : हाँ, वैसी की वैसी हालत। यही का यही हाल। इसलिए वास्तव में करने जैसा क्या है इस ज़माने में? कि किसी जगह ऐसे बुज़ुर्गों के लिए यदि रहने का स्थान बनाया हो तो बहुत अच्छा। इसलिए हमने सोचा था। मैंने कहा, ऐसा कुछ किया हो न, तो पहले यह ज्ञान दे दें। फिर उनके खाने-पीने की व्यवस्था तो यहाँ हम पब्लिक को और अन्य सामाजिक संस्था को सौंप दें तो चले। पर यह ज्ञान दिया हो तो दर्शन करते रहें तो भी काम चलता रहे। और यह ज्ञान दिया हो तो शांति रहे बेचारों को, नहीं तो किस आधार पर शांति रहे? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : पसंद आए ऐसी बात है कि नहीं?

वृद्धावस्था और साठ-पैसठ की उम्र का व्यक्ति हो और घर में रहता हो और कोई उसे कुछ माने ही नहीं, तो फिर क्या होगा? मुँह से बोल नहीं पाएँ और मन में उलटे कर्म बाँधे। इसलिए इन लोगों ने जो वृद्धाश्रमों की व्यवस्था की है, वह व्यवस्था कुछ गलत नहीं है। हेल्पिंग है। पर उसके लिए वृद्धाश्रम नहीं, पर कोई सम्मानसूचक शब्द, ऐसा शब्द होना चाहिए कि सम्माननीय लगे।

सेवा से जीवन में सुख-संपत्ति

पहली माँ-बाप की सेवा, जिसने जन्म दिया उनकी। फिर गुरु की सेवा। गुरु और माँ-बाप की सेवा तो अवश्य होनी चाहिए। यदि गुरु अच्छे नहीं हों, तो सेवा छोड़ देनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अभी माँ-बाप की सेवा नहीं करते हैं, उसका क्या? तो कौन-सी गति होती है?

दादाश्री : माँ-बाप की सेवा नहीं करें वे इस जन्म में सुखी नहीं होते हैं। माँ-बाप की सेवा करने का प्रत्यक्ष उदाहरण क्या? तब कहें कि सारी ज़िन्दगी पर्यंत दु:ख नहीं आता। अड़चनें भी नहीं आतीं, माँ-बाप की सेवा से।

हमारे हिन्दुस्तान का विज्ञान तो बहुत सुंदर था। इसलिए तो शास्त्रकारों ने प्रबंध किया था कि माँ-बाप की सेवा करना। जिससे कि आपको ज़िन्दगी में कभी धन का दु:ख नहीं पड़ेगा। अब वह न्यायसंगत होगा कि नहीं यह बात अलग है, मगर माँ-बाप की सेवा अवश्य करने योग्य है। क्योंकि यदि आप सेवा नहीं करोगे, तो आप किस की सेवा पाओगे? आपकी आनेवाली पीढ़ी कैसे सीखेगी कि आप सेवा करने लायक हो? बच्चे सब देखा करते हैं। वे देखेंगे कि हमारे फादर ने कभी उनके बाप की सेवा नहीं की है! फिर संस्कार तो नहीं ही पड़ेंगे न?

प्रश्नकर्ता : मेरा तात्पर्य यह था कि पुत्र का पिता के प्रति फ़र्ज़ क्या है?

दादाश्री : पुत्रों को पिता के प्रति फ़र्ज़ अदा करना चाहिए और पुत्र यदि फ़र्ज़ अदा करें, तो उन्हें फायदा क्या मिलेगा? माँ-बाप की जो पुत्र सेवा करेंगे, उन्हें कभी भी पैसों की कमी नहीं रहेगी, उनकी सारी ज़रूरतें पूरी होगी और गुरु की सेवा करे, वह मोक्ष पाता है। पर आज

के लोग माँ-बाप या गुरु की सेवा ही नहीं करते न? वे सभी लोग दुखी होनेवाले हैं।

महान उपकारी, माँ-बाप

जो मनुष्य माँ-बाप का दोष देखे, उनमें कभी बरकत ही नहीं आती। पैसेवाला बने शायद, पर उसकी आध्यात्मिक उन्नति कभी नहीं होती। माँ-बाप का दोष देखने नहीं चाहिए। उपकार तो भूलें ही किस तरह? किसी ने चाय पिलाई हो, तो उसका उपकार नहीं भूलते तो हम माँ-बाप का उपकार भूलें ही किस तरह? तू समझ गया? हं... अर्थात् बहुत उपकार मानना चाहिए। बहुत सेवा करना, मदर-फादर की बहुत सेवा करनी चाहिए।

इस दुनिया में तीन का महान उपकार है। उस उपकार को छोड़ना ही नहीं है। फादर-मदर और गुरु का! हमें जो रास्ते पर लाए हों उनका, इन तीनों का उपकार भुलाया जाए ऐसा नहीं है।

'ज्ञानी' की सेवा का फल

हमारा सेव्य पद गुप्त रखकर सेवक भाव से हमें काम करना है। 'ज्ञानी पुरुष' तो सारे 'वर्ल्ड' के सेवक और सेव्य कहलाते हैं। सारे संसार की सेवा भी 'मैं' ही करता हूँ और सारे संसार की सेवा भी 'मैं' लेता हूँ। यह यदि तेरी समझ में आ जाए तो तेरा काम निकल जाए ऐसा है।

'हम' यहाँ तक की जिम्मेदारी लेते हैं कि कोई मनुष्य हमसे मिलने आया हो तो उसे 'दर्शन' का लाभ प्राप्त होना ही चाहिए। 'हमारी' कोई सेवा करे तो हमारे सिर उसकी जिम्मेवारी आ पड़ती है और हमें उसे मोक्ष में ले ही जाना पड़ता है।

जय सच्चिदानंद

शुद्धात्मा के प्रति प्रार्थना

(प्रतिदिन एक बार बोलें)

हे अंतर्यामी परमात्मा! आप प्रत्येक जीवमात्र में बिराजमान हो, वैसे ही मुझ में भी बिराजमान हो। आपका स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। मेरा स्वरूप शुद्धात्मा है।

हे शुद्धात्मा भगवान! मैं आपको अभेद भाव से अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अज्ञानतावश मैंने जो जो ★★ दोष किये हैं, उन सभी दोषों को आपके समक्ष ज़ाहिर करता हूँ। उनका हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ और आपसे क्षमा याचना करता हूँ। हे प्रभु ! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँ, ऐसी आप मुझे शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

हे शुद्धात्मा भगवान! आप ऐसी कृपा करो कि हमें भेदभाव छूट जाये और अभेद स्वरूप प्राप्त हो। हम आप में अभेद स्वरूप से तन्मयाकार रहें।

★★ जो जो दोष हुए हों, वे मन में ज़ाहिर करें।

प्रतिक्रमण विधि

प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में, देहधारी (जिसके प्रति दोष हुआ हो, उस व्यक्ति का नाम) के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे हे शुद्धात्मा भगवान, आपकी साक्षी में, आज दिन तक मुझसे जो जो ★★ दोष हुए हैं, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ। मुझे क्षमा करें। और फिर से ऐसे दोष कभी भी नहीं करूँ, ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ। उसके लिए मुझे परम शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए।

★★ क्रोध-मान-माया-लोभ, विषय-विकार, कषाय आदि से किसी को भी दुःख पहुँचाया हो, उस दोषो को मन में याद करें।

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जिला : गांधीनगर, गुजरात - ३८२४२१. फोन : (०७९) ३९८३०१००, email : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८००१४. फोन : (०७९)२७५४०४०८, २७५४३९७९

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी, पोस्ट : मालियासण, जिला : राजकोट. फोन : ९९२४३४३४७८

मुंबई : ९३२३५२८९०१ **पुणे** : ९८२२०३७७४०

वड़ोदरा : (०२६५)२४१४१४२ **बेंगलूर** : ९३४१९४८५०९

कोलकता : ०३३-३२९३३८८५

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institue : Dr. Bachu Amin,** 100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606. **Tel :** 785-271-0869, E-mail : bamin@cox.net

Dr. Shirish Patel, 2659, Raven Circle, Corona, CA 92882, Tel. : 951-734-4715, **E-mail :** shirishpatel@sbcglobal.net

U.K. : **Dada Centre**, 236, Kingsbury Road, (Above Kingsbury Printers), Kingsbury, London, NW9 0BH, **Tel. :** 07956476253, **E-mail:** dadabhagwan_uk@yahoo.com

Canada : **Dinesh Patel,** 4, Halesia Drive, Etobicock, Toronto, M9W 6B7. **Tel. :** 416 675 3543 **E-mail:** ashadinsha@yahoo.ca

Canada : +1 416-675-3543 **Australia** : +61 421127947

Dubai : +971 506754832 **Singapore** : +65 81129229

Website : www.dadabhagwan.org, www.dadashri.org